5.

दलित साहित्य : एक विश्लेषण

डॉ. (श्रीमती) धनेश्वरी दुबे

प्रस्तावना

समाज परिवर्तनशील है। समाज के प्रवाह के साथ हम सभी बदलते हैं और हमारे विचार भी बदलते हैं, इसीलिए साहित्य का सैद्धांतिक रूप भी बदलता रहता है। साहित्य युग का प्रतिनिधित्व करता है तथा भविष्य के बिंबों का अंकन भी साहित्य का कर्तव्य है। नवयुग की चेतना का आभास साहित्यकार को होता है और भविष्य की पदचाप की आहट के प्रति भी उसमें जागरूकता होती है। प्रारंभ से साहित्य में एक वर्ग–विशेष का ही वर्चस्व रहा है। यह वर्ग विशेष केवल आर्थिक–विषमता का चित्रण ही अपने साहित्य में करता था जो समाज का सही रूप प्रस्तुत करने में बाधक लगता है।

जातिगत समस्या भारतीय समाज की बुनियादी समस्याओं में से एक है। प्राचीन काल से लेकर आज तक साहित्य में दलितों की अस्मिता एवं स्वाभिमान को कोई महत्व नहीं दिया गया। संस्कृत साहित्य में तो दलित पात्रों की भाषा भी संस्कृत नहीं रही अर्थात् साहित्य में भी दलितों का शोषण होता रहा। निम्न जाति का होने के कारण सवर्ण समाज इनके साथ बुरा बर्ताव करता था। भारतीय भाषाओं के साहित्य में दलित साहित्य का प्रवाह है लेकिन विद्वानों में इस साहित्य के लिए प्रयुक्त शब्द 'दलित' को लेकर मतभेद रहे हैं, प्रारंभ में दलित शब्द का बड़ा विरोध हुआ क्योंकि इसे अपमानित करने वाला शब्द माना गया। वास्तव में दलित कौन है? दलित की पहचान क्या है? दलित शब्द को किस जाति या वर्ण का परिचायक माना जाए या निम्न रूप से जीवन–यापन करने वालों को इस श्रेणी में रखा जाए? आदि न जाने कितने प्रश्न 'दलित' शब्द के प्रयोग के कारण चर्चा के केंद्र बिंदु बने।

अर्थ एवं परिभाषा– 'दलित' शब्द का शाब्दिक अर्थ है जिसका दलन और दमन हुआ है, जो दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, पस्त–हिम्मत, हतोत्साहित आदि है।

PRINCIPAL,
GOVT. ENGINEER VISHWESARAIYA
P. G. COLLEGE, KORBA (C. G.)
GOVT. E.V.P.G. COLLEGE KORBA